IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

राजपूताना की रियासतों में लोकतांत्रिक चेतना जगाने में प्रजामण्डलों की भूमिका

वासु देव मीना

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र राजपूताना की विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलनों की भूमिका और उनके द्वारा लोकतांत्रिक चेतना के प्रसार का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में जब भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन ने गति पकड़ी, तब राजपूताना की देशी रियासतों में भी राजनीतिक जागृति का संचार हुआ। प्रजामण्डलों ने निरंकुश राजतंत्र के विरुद्ध जनता को संगठित कर उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए संघर्ष किया। यह अध्ययन कोटा, बूँदी, झालावाड़, बाँसवाड़ा, अलवर, धौलपुर, करौली, डूंगरपुर, सिरोही और जैसलमेर जैसी प्रमुख रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलनों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करता है। इन आन्दोलनों ने न केवल राजनीतिक अधिकारों की माँग की बल्कि सामाजिक और आर्थिक सुधारों की दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। शोध में प्राथमिक स्रोतों जैसे गुप्तचर रिपोर्ट, राजकीय फाइलें और समकालीन दस्तावेजों के आधार पर यह स्थापित किया गया है कि प्रजामण्डलों ने राजपूताना में लोकतंत्र की नींव रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मुख्य शब्द: प्रजामण्डल आन्दोलन, राजपूताना रियासतें, लोकतांत्रिक चेतना, उत्तरदायी शासन, राजनीतिक जागृति, नागरिक अधिकार, भारत छोड़ो आन्दोलन, देशी राज्य लोक परिषद

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में जब ब्रिटिश भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र गति से आगे बढ़ रहा था, उसी समय राजपूताना की देशी रियासतों में भी राजनीतिक जागरण का सूत्रपात हो रहा था। राजपूताना की रियासतें सदियों से सामंती व्यवस्था और निरंकुश राजतंत्र के अधीन थीं, जहाँ जनता के पास कोई राजनीतिक अधिकार नहीं थे। ब्रिटिश सरकार की परोक्ष सहमति से इन रियासतों के शासक अपनी प्रजा पर मनमाना शासन करते थे। बेगार, अत्यधिक कर, सामाजिक अन्याय और प्रशासनिक भ्रष्टाचार जनता के दैनिक जीवन का हिस्सा बन चुके थे।

इस परिप्रेक्ष्य में प्रजामण्डलों का उदय एक क्रांतिकारी घटना थी। प्रजामण्डल वस्तुतः जनता के राजनीतिक संगठन थे जिनका मुख्य उद्देश्य रियासतों में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना, नागरिक अधिकारों की रक्षा करना और जनता में राजनीतिक चेतना का प्रसार करना था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन सन् 1938 में रियासतों की देशी राज्य लोक परिषदों को समर्थन देने का निर्णय प्रजामण्डल आन्दोलन के लिए एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। इसके पश्चात राजपूताना की लगभग सभी प्रमुख रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना हुई और व्यापक जन आन्दोलन प्रारम्भ हुए।

प्रजामण्डलों ने केवल राजनीतिक माँगें ही नहीं उठाईं बल्कि शिक्षा के प्रसार, सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन, किसानों के अधिकारों की रक्षा और आर्थिक शोषण के विरुद्ध भी आवाज उठाई। ये संगठन जनता को संगठित करने और उनमें राजनीतिक चेतना जागृत करने का माध्यम बने। सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों, सत्याग्रहों और विभिन्न प्रकार के आन्दोलनों के

माध्यम से प्रजामण्डलों ने जनता को उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया और निरंकुश शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की भावना का विकास किया।

शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य हैं:

- प्रथम, राजपूताना की विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना और विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना। इसके अंतर्गत यह जानना महत्वपूर्ण है कि विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डलों की स्थापना किन परिस्थितियों में हुई और किन कारकों ने इन्हें प्रेरित किया।
- द्वितीय, प्रजामण्डलों द्वारा चलाए गए विभिन्न आन्दोलनों और उनकी कार्यप्रणाली का विश्लेषण करना। इसमें सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों, सत्याग्रहों और अन्य विरोध प्रदर्शनों का विस्तृत अध्ययन सम्मिलित है।
- तृतीय, रियासती सरकारों द्वारा प्रजामण्डलों के दमन के लिए अपनाई गई नीतियों और इन दमनकारी कार्यवाहियों के प्रति प्रजामण्डलों की प्रतिक्रिया का मूल्यांकन करना। यह समझना आवश्यक है कि किस प्रकार निरंकुश सत्ता ने लोकतांत्रिक आन्दोलनों का विरोध किया।
- चतुर्थ, प्रजामण्डल आन्दोलनों के माध्यम से जनता में राजनीतिक चेतना के विकास का आकलन करना। इसके अंतर्गत यह विश्लेषण करना है कि किस प्रकार साधारण जनता, किसान, महिलाएँ और विद्यार्थी राजनीतिक आन्दोलनों में भागीदार बने।
- पंचम, प्रजामण्डलों द्वारा उठाई गई प्रमुख माँगों और प्राप्त उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन करना। विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डलों की सफलता और असफलता के कारणों की पहचान करना भी इस उद्देश्य का हिस्सा है।
- षष्ठ, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के व्यापक संदर्भ में राजपूताना के प्रजामण्डल आन्दोलनों की भूमिका को रेखांकित करना। इससे यह स्पष्ट होगा कि रियासती आन्दोलनों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में किस प्रकार योगदान दिया।

शोध पद्धति एवं सामग्री

प्रस्तुत शोध पत्र ऐतिहासिक शोध पद्धति पर आधारित है। शोध सामग्री के संकलन में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में विभिन्न रियासतों की गुप्तचर रिपोर्ट, राजकीय गोपनीय फाइलें, समकालीन समाचार पत्र और प्रजामण्डलों द्वारा जारी किए गए दस्तावेज सम्मिलित हैं। राजस्थान राज्य अभिलेखागार, अजमेर और बीकानेर में संरक्षित दस्तावेजों से महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त की गई है। विशेष रूप से राजपूताना राज्यों की पाक्षिक इंटेलिजेंस रिपोर्ट, विभिन्न रियासतों की कॉन्फिडेंशियल फाइलें और महकमा खास के अभिलेख अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

द्वितीयक स्रोतों में विभिन्न जिला गजेटियर, इतिहासकारों द्वारा लिखित पुस्तकें और शोध लेख शामिल हैं। राजस्थान के इतिहास पर उपलब्ध मानक ग्रंथों का भी सहारा लिया गया है। विशेष रूप से डी डी गौड़ की पुस्तक 'कॉन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेंट ऑफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स' और एच एल त्रिवेदी की पुस्तक 'बांसवाड़ा का सामाजिक और राजनीतिक इतिहास' से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है।

शोध पद्धति के अंतर्गत ऐतिहासिक विश्लेषण की वर्णनात्मक और विवेचनात्मक दोनों विधियों का प्रयोग किया गया है। विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलनों का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए समानताओं और भिन्नताओं की पहचान की गई है। घटनाक्रम को कालक्रमानुसार प्रस्तुत करते हुए कारण और प्रभाव के संबंधों को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का परस्पर सत्यापन कर तथ्यों की विश्वसनीयता सुनिश्चित की गई है। इस प्रकार यह शोध पत्र ऐतिहासिक साक्ष्यों पर आधारित एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

परिणाम एवं विश्लेषण

कोटा रियासत में प्रजामण्डल आन्दोलन

कोटा राज्य प्रजामण्डल राजपूताना की सबसे सक्रिय और संगठित प्रजामण्डलों में से एक था। सन् 1938 में कांग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन में रियासतों की देशी राज्य लोक परिषदों को समर्थन देने के निर्णय से कोटा राज्य प्रजामण्डल में नई शक्ति का संचार हुआ। इसी वर्ष प्रजामण्डल का वार्षिक अधिवेशन बारां में आयोजित किया गया जिसमें उत्तरदायी शासन की माँग प्रमुखता से उठाई गई। मई 1939 में मंगरौल में आयोजित चौथे अधिवेशन में पंडित नयनूराम शर्मा को अध्यक्ष बनाया गया जो देशी राज्य लोक परिषद के प्रथम अधिवेशन में भाग ले चुके थे।

प्रजामण्डल ने केवल राजनीतिक माँगें ही नहीं उठाईं बल्कि किसानों की समस्याओं पर भी ध्यान दिया। 1938 में सुल्तानपुर में किसान सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें किसानों के हित में 22 प्रस्ताव पारित किए गए। इन प्रस्तावों को समाचार पत्रों में प्रकाशित किया गया और महकमा खास को भी भेजा गया। इससे स्पष्ट होता है कि प्रजामण्डल केवल शहरी शिक्षित वर्ग तक सीमित नहीं था बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों और किसानों तक अपनी पहुँच बनाने का प्रयास कर रहा था।

सितंबर 1941 में कोटा शहर के विभिन्न स्थानों पर प्रजामण्डल की सभाएँ आयोजित की गईं जिनमें नगरपालिका चुनावों में वयस्क मताधिकार, राज्य प्रशासन में सुधार तथा जनता और जागीरदारों को समान अधिकार देने संबंधी प्रस्ताव पारित किए गए। नवंबर 1941 के अधिवेशन में अभिन्न हरि को अध्यक्ष बनाया गया जिन्होंने नयनूराम शर्मा की असामयिक मृत्यु के बाद नेतृत्व संभाला था। इस अधिवेशन में उत्तरदायी शासन की माँग के साथ अशिक्षा का निवारण, चिकित्सा सुविधाओं में वृद्धि और किसानों को अधिक सुविधाएँ देने की माँग की गई।

भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव कोटा में स्पष्ट रूप से दिखाई दिया। 9 अगस्त 1942 को राजकीय महाविद्यालय और सिटी स्कूल के विद्यार्थियों ने राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में हड़ताल कर दी। छात्रों के साथ प्रजामण्डल के कार्यकर्ता और आम जनता भी जुड़ गई। 13 अगस्त तक लगातार प्रदर्शन किए गए जिनमें प्रतिदिन सैकड़ों छात्र और जनता भाग लेती थी। इन प्रदर्शनों में अनुशासन और संगठन की उच्च भावना दिखाई दी। जनता की ओर से प्रदर्शनकारियों को भोजन और नाश्ता उपलब्ध कराया जाता था जो जन समर्थन का प्रतीक था।

बूँदी रियासत में प्रजामण्डल आन्दोलन

बूँदी में राजनीतिक जागृति का प्रारम्भ विजयसिंह पथिक के बिजौलिया आन्दोलन से जुड़ा हुआ था। 1922 में बूँदी के शासक द्वारा जनता पर अतिरिक्त कर लगाने और बेगार का बोझ बढ़ाने के कारण विजयसिंह पथिक और राजस्थान सेवा संघ के रामनारायण चौधरी के नेतृत्व में आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। नमाना गाँव में पुलिस अत्याचार के बाद यह आन्दोलन राज्यस्तरीय आन्दोलन बन गया। महाराव रघुवीरसिंह को बेगार पर प्रतिबंध लगाना पड़ा परंतु जनता की मांगें जारी रहीं।

1931 में बूँदी प्रजामण्डल की स्थापना हुई और कान्तिलाल इसके प्रथम अध्यक्ष बने। कान्तिलाल ने अपने भाषणों में उत्तरदायी शासन की स्थापना की मांग के साथ नागरिक अधिकारों के बारे में जनता को जागरूक किया। 1932 में प्रजामण्डल ने सरकार के समक्ष कई महत्वपूर्ण मांगें प्रस्तुत कीं जिनमें परिषद में नामित सदस्यों के स्थान पर निर्वाचित सदस्य, ऊंचे पदों पर स्थानीय व्यक्तियों की नियुक्ति, फौजदारी मामलों की सुनवाई ज्यूरी द्वारा और निर्वाचित नगर निगम तथा ग्राम पंचायतों की स्थापना शामिल थीं।

सरकार ने इन मांगों को अस्वीकार कर दिया और दमन का सहारा लिया। 1935 में सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध लगा दिया गया। 1937 में राजस्थान नामक समाचार पत्र पर प्रतिबंध लगाया गया और राज्य में क्रांतिकारियों के प्रवेश पर रोक लगा दी गई। ब्रिटिश सरकार के दबाव में बूँदी शासक को क्रांतिकारियों को सौंपने का आदेश दिया गया। इन सब दमनकारी कार्यवाहियों के बावजूद प्रजामण्डल और अधिक सशक्त और सक्रिय होता गया। यह प्रजामण्डल आन्दोलन की दृढ़ता का प्रमाण था।

झालावाड़ और अन्य रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलन

झालावाड़ राज्य 1927 से 1934 तक राजनीतिक रूप से निष्क्रिय रहा। 1934 में हाड़ौती प्रजामण्डल के गठन के पश्चात यहाँ राजनीतिक जागृति का प्रसार हुआ। नैनूराम शर्मा और गोपाललाल कोटिया प्रजामण्डल के सक्रिय सदस्य थे। रामचंद्र ने हरिजन और पददलित वर्ग की स्थिति में सुधार के प्रयास किए। 1942 में रतनलाल शर्मा और तनसुखलाल मित्तल ने खादी का प्रचार किया और शिक्षा के विकास, छुआछूत मिटाने तथा नशाबंदी के लिए कार्य किया। विद्यार्थी परिषद के गठन से युवा वर्ग भी राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय हुआ।

बाँसवाड़ा में भूपेंद्रनाथ त्रिवेदी के अथक प्रयासों से राजनीतिक जागृति का प्रसार हुआ। 1940 के आसपास बाँसवाड़ा में निरंकुश राजतंत्र था और लोग खादीधारी व्यक्तियों से बात करने में भी हिचकिचाते थे। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन से प्रभावित होकर कई नेता गिरफ्तार हुए। दिसंबर 1945 में त्रिवेदी ने अन्य साथियों के साथ मिलकर प्रजामण्डल की स्थापना की। धीरे-धीरे आदिवासी भी प्रजामण्डल में सक्रिय भाग लेने लगे। महिला मंडल, विद्यार्थी कांग्रेस और स्वयंसेवक दल जैसे सहयोगी संगठनों का गठन किया गया।

अलवर राज्य प्रजामण्डल का गठन 1938 में हरिनारायण शर्मा और कुंजबिहारीलाल मोदी द्वारा किया गया। पंजीकरण में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा क्योंकि शासक तेजसिंह प्रजामण्डल के उद्देश्यों से संतुष्ट नहीं थे। दो वर्षों तक बिना पंजीकरण कार्य किया गया। अप्रैल 1940 में निर्वाचित नगरपालिका के 18 सदस्यों में से 15 सदस्य प्रजामण्डल के समर्थक थे जो जन समर्थन का प्रमाण था। अंततः 1 अगस्त 1940 को सरकारी संशोधनों के साथ प्रजामण्डल का पंजीकरण हो गया।

धौलपुर में स्वामी श्रद्धानंद ने 1918 में ही लोकप्रिय सरकार की स्थापना के लिए आन्दोलन आरम्भ किया था। 1936 में कृष्णदत्त पालीवाल की अध्यक्षता में धौलपुर प्रजामण्डल की स्थापना हुई। सरकार ने कठोर दमन किया और कई नेताओं को गिरफ्तार कर निर्वासित किया। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रभाव यहाँ भी पड़ा। करौली प्रजामण्डल की स्थापना 1938 में हुई थी परंतु प्रारम्भ में उत्तरदायी शासन की मांग नहीं की गई। राजा भीमपाल ने प्रजामण्डल का कठोर दमन किया और समर्थकों को कठोर दंड दिया।

डूंगरपुर में डूंगरपुर सेवा संघ 1942 से राजनीतिक कार्यों में सक्रिय हो गया। भोगीलाल पंड्या के नेतृत्व में जुलूस और सभाएँ आयोजित की गईं। 26 जनवरी 1944 को डूंगरपुर राज्य प्रजामण्डल की औपचारिक स्थापना हुई। सिरोही में गोकुल भाई भट्ट ने 1938 में प्रजामण्डल की स्थापना की जिसके बाद तुरंत दमन प्रारम्भ हो गया। जैसलमेर में 1939 में शिवशंकर गोपा और अन्य युवकों ने प्रजापरिषद की स्थापना की परंतु कठोर दमन का सामना करना पड़ा।

प्रजामण्डलों की कार्यप्रणाली और रणनीति

प्रजामण्डलों ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न माध्यमों का उपयोग किया। सार्वजनिक सभाओं और अधिवेशनों का आयोजन प्रमुख रणनीति थी। इन सभाओं में जनता को राजनीतिक अधिकारों के बारे में जागरूक किया जाता था और रियासती प्रशासन की कमियों को उजागर किया जाता था। जुलूसों के माध्यम से व्यापक जनसमर्थन प्रदर्शित किया जाता था और जनता में उत्साह का संचार किया जाता था।

स्वतंत्रता दिवस और अन्य राष्ट्रीय पर्वों का आयोजन प्रजामण्डलों की एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी। 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाता था जिसमें राष्ट्रीय ध्वज फहराया जाता था और देशभक्ति गीत गाए जाते थे। सुभाष चंद्र बोस की जयंती, गांधी जयंती जैसे अवसरों पर विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाते थे। इन आयोजनों से जनता में राष्ट्रीय चेतना का विकास होता था और रियासती सीमाओं को पार कर व्यापक भारतीय राष्ट्रवाद से जुड़ाव स्थापित होता था।

प्रजामण्डलों ने विद्यार्थियों को आन्दोलन से जोड़ने का विशेष प्रयास किया। विद्यार्थी परिषदों का गठन किया गया जो युवा वर्ग को संगठित करने का माध्यम बने। महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए महिला मंडलों की स्थापना की गई। स्वयंसेवक दलों का गठन कर युवाओं को अनुशासित रूप से आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रशिक्षित किया गया। इस प्रकार प्रजामण्डलों ने समाज के विभिन्न वर्गों को राजनीतिक आन्दोलन से जोड़ने का प्रयास किया।

प्रजामण्डलों ने मांगपत्रों और ज्ञापनों के माध्यम से अपनी मांगें रियासती सरकारों के समक्ष रखीं। ये मांगें प्रायः उत्तरदायी शासन की स्थापना, नागरिक अधिकारों की सुरक्षा, प्रेस की स्वतंत्रता, सार्वजनिक सभाओं की अनुमति, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं में सुधार, कर भार में कमी और किसानों को राहत से संबंधित होती थीं। समाचार पत्रों के माध्यम से प्रचार किया जाता था और जनमत तैयार किया जाता था। जहाँ स्थानीय समाचार पत्रों पर प्रतिबंध था वहाँ अन्य राज्यों के समाचार पत्रों का उपयोग किया जाता था।

रियासती सरकारों का दमन और प्रजामण्डलों का प्रतिरोध

राजपूताना की लगभग सभी रियासती सरकारों ने प्रजामण्डल आन्दोलनों का कठोर दमन किया। सार्वजनिक सभाओं और जुलूसों पर प्रतिबंध लगाना सबसे सामान्य दमनकारी उपाय था। धारा 144 लगाकर तीन से अधिक व्यक्तियों के एकत्र होने पर रोक लगाई जाती थी। समाचार पत्रों पर प्रतिबंध लगाकर प्रचार पर अंकुश लगाने का प्रयास किया जाता था। बाहरी राज्यों के क्रांतिकारियों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं के प्रवेश पर रोक लगाई जाती थी।

प्रजामण्डल के नेताओं को गिरफ्तार कर कारावास में डाला जाता था। कई नेताओं को राज्य से निर्वासित कर दिया जाता था। सरकारी कर्मचारियों को प्रजामण्डल की गतिविधियों में भाग लेने से रोकने के लिए आचरण संबंधी कठोर नियम बनाए गए। जो सरकारी कर्मचारी प्रजामण्डल के प्रति सहानुभूति रखते थे उन्हें नौकरी से निकाल दिया जाता था या अन्य दंड दिए जाते थे। प्रजामण्डल की संपत्ति जब्त कर ली जाती थी और कार्यालय भवन मिलना कठिन बना दिया जाता था।

जागीरदारों के परिवारों के सदस्य जो प्रजामण्डल में सक्रिय थे उनकी जागीरें वापस ले ली जाती थीं। लाठीचार्ज और पुलिस अत्याचार आम बात थी। कुछ रियासतों में प्रजामण्डलों को पंजीकृत करने से इनकार कर दिया गया या पंजीकरण में अनेक बाधाएँ उत्पन्न की गईं। जहाँ पंजीकरण किया भी गया वहाँ संविधान में सरकारी संशोधन थोपे गए और प्रजामण्डलों को अपना स्वतंत्र झंडा रखने की अनुमति नहीं दी गई।

इन सब दमनकारी कार्यवाहियों के बावजूद प्रजामण्डल आन्दोलन निरंतर सशक्त होते गए। प्रजामण्डल के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने अदम्य साहस और दृढ़ संकल्प का परिचय दिया। गिरफ्तारी और यातनाओं को सहर्ष स्वीकार किया गया। बिना पंजीकरण के भी कार्य जारी रखा गया। भूमिगत रहकर आन्दोलन चलाया गया। एक नेता के गिरफ्तार होने पर दूसरा नेतृत्व संभाल लेता था। इस प्रकार दमन का प्रभाव अस्थायी ही रहता था और आन्दोलन नई शक्ति के साथ पुनः उभर आता था।

प्रजामण्डल आन्दोलनों का प्रभाव और योगदान

प्रजामण्डल आन्दोलनों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान राजपूताना की जनता में राजनीतिक चेतना का विकास था। सदियों से निरंकुश राजतंत्र के अधीन रहने के कारण जनता अपने अधिकारों से अनभिज्ञ थी। प्रजामण्डलों ने जनता को यह बताया कि शासन में उनकी भी भागीदारी होनी चाहिए और शासक जनता के प्रति उत्तरदायी होने चाहिए। नागरिक अधिकारों, प्रेस की स्वतंत्रता, सभा और संगठन की स्वतंत्रता जैसी लोकतांत्रिक अवधारणाओं से जनता को परिचित कराया गया।

प्रजामण्डल आन्दोलनों ने जनता को संगठित करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। विभिन्न वर्गों, जातियों और समुदायों के लोग एक मंच पर आए। आदिवासी, किसान, मजदूर, व्यापारी, शिक्षित मध्यम वर्ग सभी प्रजामण्डल आन्दोलनों में भागीदार बने। महिलाओं और विद्यार्थियों की सक्रिय भागीदारी ने आन्दोलन को व्यापक आधार प्रदान किया। इससे सामाजिक एकता और सामूहिक चेतना का विकास हुआ।

प्रजामण्डलों ने केवल राजनीतिक मांगें ही नहीं उठाईं बल्कि सामाजिक सुधारों की दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। छुआछूत के विरुद्ध अभियान चलाए गए। हरिजन और पददलित वर्ग की स्थिति में सुधार के प्रयास किए गए। नशाबंदी का प्रचार किया गया। खादी और स्वदेशी का प्रचार कर आर्थिक स्वावलंबन की भावना विकसित की गई। शिक्षा के प्रसार पर बल दिया गया। इस प्रकार प्रजामण्डलों ने सामाजिक जागरण का भी कार्य किया।

प्रजामण्डल आन्दोलनों ने रियासती प्रशासन में कुछ सुधारों को प्रेरित किया। यद्यपि अधिकांश रियासती शासकों ने प्रजामण्डलों की मुख्य मांग उत्तरदायी शासन की स्थापना को स्वीकार नहीं किया परंतु जनता को शांत करने के लिए कुछ सुधार करने पड़े। बेगार पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। कुछ रियासतों में संवैधानिक सुधारों की घोषणा की गई। निर्वाचित

नगरपालिकाओं का गठन किया गया। प्रशासन में स्थानीय लोगों को कुछ भागीदारी दी गई। ये सुधार अपर्याप्त थे परंतु वे प्रजामण्डल आन्दोलनों के दबाव का परिणाम थे।

प्रजामण्डल आन्दोलनों ने राजपूताना को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की मुख्यधारा से जोड़ा। रियासतों की जनता को यह अनुभव हुआ कि वे व्यापक भारतीय राष्ट्र का हिस्सा हैं। भारत छोड़ो आन्दोलन में रियासतों की सक्रिय भागीदारी इस जागृति का प्रमाण थी। अखिल भारतीय देशी राज्य लोक परिषद के साथ संबंध ने रियासती आन्दोलनों को राष्ट्रीय स्तर की पहचान दी। स्वतंत्रता के पश्चात रियासतों के भारतीय संघ में विलय की प्रक्रिया में प्रजामण्डलों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

प्रजामण्डल आन्दोलनों की सीमाएँ और चुनौतियाँ

प्रजामण्डल आन्दोलनों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। सबसे बड़ी चुनौती रियासती सरकारों का कठोर दमन था। सीमित संसाधनों के साथ शक्तिशाली राज्य मशीनरी का सामना करना अत्यंत कठिन था। अधिकांश रियासतों में प्रजामण्डलों को कानूनी मान्यता नहीं मिली और उन्हें भूमिगत रहकर कार्य करना पड़ा। नेताओं की बार-बार गिरफ्तारी से संगठन कमजोर होता था और निरंतरता बाधित होती थी।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रजामण्डलों की पहुँच सीमित रही। अधिकांश आन्दोलन शहरी क्षेत्रों तक सीमित थे। अधिवेशनों में ग्रामीणों की उपस्थिति प्रायः कम रहती थी जैसा कि कोटा प्रजामण्डल के मंगरौल अधिवेशन में देखा गया। किसानों को संगठित करने के प्रयास सीमित सफलता ही प्राप्त कर सके। जागीरदारों और सामंती तत्वों का विरोध भी प्रजामण्डलों के लिए चुनौती था क्योंकि वे अपनी विशेषाधिकारों को खोना नहीं चाहते थे।

संसाधनों की कमी एक गंभीर समस्या थी। प्रजामण्डलों को अपने कार्यालय भवन के लिए भी संघर्ष करना पड़ता था। समाचार पत्रों पर प्रतिबंध के कारण प्रचार कार्य कठिन था। आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण व्यापक आन्दोलन चलाना संभव नहीं हो पाता था। शिक्षा के अभाव के कारण जनता को राजनीतिक अधिकारों के बारे में जागरूक करना एक दीर्घकालिक और कठिन कार्य था।

कुछ प्रजामण्डलों में आंतरिक मतभेद भी थे। नेतृत्व के प्रश्न पर विवाद होते थे। कार्यप्रणाली को लेकर असहमति होती थी। कुछ नेता सरकार के साथ समझौता करने के पक्ष में थे जबकि अन्य कठोर रुख अपनाना चाहते थे। ब्रिटिश सरकार और रियासती शासकों के बीच का गठजोड़ भी प्रजामण्डलों के लिए चुनौतीपूर्ण था। ब्रिटिश सरकार देशी राज्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहती थी और रियासती शासकों को दमन की खुली छूट थी।

इन सीमाओं और चुनौतियों के बावजूद प्रजामण्डल आन्दोलनों ने अपना कार्य जारी रखा और अंततः राजपूताना में लोकतांत्रिक चेतना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

निष्कर्ष

राजपूताना की रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलनों ने लोकतांत्रिक चेतना जगाने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। ये आन्दोलन केवल राजनीतिक आन्दोलन नहीं थे बल्कि व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण के माध्यम भी थे। सदियों की निरंकुश राजशाही के बाद जनता को यह अनुभव हुआ कि वे भी राजनीतिक अधिकारों के हकदार हैं और शासन में उनकी भागीदारी आवश्यक है। प्रजामण्डलों ने उत्तरदायी शासन, नागरिक अधिकार, प्रेस की स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय जैसी लोकतांत्रिक अवधारणाओं को जनसाधारण तक पहुँचाया।

विभिन्न रियासतों में प्रजामण्डल आन्दोलनों की प्रकृति और तीव्रता में भिन्नता थी। कोटा, बूँदी और डूंगरपुर जैसी रियासतों में आन्दोलन अधिक सशक्त और संगठित थे जबकि जैसलमेर जैसी दूरस्थ रियासतों में प्रजामण्डल प्रारंभिक अवस्था में ही रहे। तथापि सभी रियासतों में प्रजामण्डलों ने राजनीतिक जागरण का कार्य किया और निरंकुश सत्ता को चुनौती दी। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि कठोर दमन के बावजूद ये आन्दोलन समाप्त नहीं हुए बल्कि और अधिक सशक्त होते गए।

प्रजामण्डल आन्दोलनों ने विभिन्न सामाजिक वर्गों को एक मंच पर लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। किसान, मजदूर, व्यापारी, शिक्षित मध्यम वर्ग, महिलाएँ और विद्यार्थी सभी इन आन्दोलनों में भागीदार बने। आदिवासी समुदाय भी कुछ रियासतों में प्रजामण्डलों से जुड़े। इससे सामाजिक एकता का विकास हुआ और जाति तथा वर्ग की संकीर्ण सीमाओं को पार कर एक

व्यापक लोकतांत्रिक चेतना का उदय हुआ। सामाजिक सुधारों की दिशा में किए गए कार्यों ने समाज को आधुनिकता की ओर अग्रसर किया।

प्रजामण्डल आन्दोलनों का एक महत्वपूर्ण योगदान राजपूताना को राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की मुख्यधारा से जोड़ना था। रियासतों की जनता ने अनुभव किया कि वे पृथक इकाइयाँ नहीं बल्कि व्यापक भारतीय राष्ट्र का अभिन्न अंग हैं। भारत छोड़ो आन्दोलन, स्वतंत्रता दिवस और अन्य राष्ट्रीय आन्दोलनों में सक्रिय भागीदारी ने इस राष्ट्रीय चेतना को मजबूत किया। स्वतंत्रता के पश्चात रियासतों के भारतीय संघ में शांतिपूर्ण विलय में प्रजामण्डलों द्वारा विकसित यह राष्ट्रीय चेतना महत्वपूर्ण सिद्ध हुई।

यद्यपि प्रजामण्डल आन्दोलनों की कुछ सीमाएँ थीं और उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा, तथापि उनका ऐतिहासिक योगदान निर्विवाद है। इन आन्दोलनों ने राजपूताना में लोकतंत्र की नींव रखी और जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक और सक्रिय नागरिक बनाया। प्रजामण्डलों के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने अदम्य साहस, दृढ़ संकल्प और त्याग की भावना से आन्दोलन को आगे बढ़ाया। उनके बलिदान और संघर्ष ने आधुनिक राजस्थान के लोकतांत्रिक ढांचे की आधारशिला रखी।

अंततः यह कहा जा सकता है कि प्रजामण्डल आन्दोलनों ने राजपूताना के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात किया। निरंकुश राजतंत्र से लोकतांत्रिक शासन की ओर संक्रमण की यात्रा में प्रजामण्डलों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक रही। आज के लोकतांत्रिक राजस्थान की नींव उन प्रजामण्डल आन्दोलनों में खोजी जा सकती है जिन्होंने जनता में लोकतांत्रिक मूल्यों और नागरिक चेतना का संचार किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

- *अलवर कान्फिडेन्शियल फाइल नं. 45 एल.पी. 46 प्रजामण्डल द्वारा भाषण.* राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.
- *कोटा राज्य कान्फिडेन्शियल फाइल नं. 12/33 महकमा खास.* राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.
- अज्ञात. (1940-41). *राजपूताना राज्यों की पाक्षिक इंटेलिजेंस रिपोर्ट.* उदयपुर सी.बी. बस्ता नं. 1, क्रमांक 2. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.
- अज्ञात. (1942). *राजपूताना राज्यों की पाक्षिक रिपोर्ट अगस्त.* राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.
- अज्ञात. (1945). *राजपूताना राज्य पाक्षिक रिपोर्ट.* उदयपुर सी.बी. बस्ता नं. 1, क्रमांक 02. राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.
- गौड़, डी. डी. (वर्ष अनुपलब्ध). *कांस्टीट्यूशनल डेवलपमेंट ऑफ ईस्टर्न राजपूताना स्टेट्स.* प्रकाशक अनुपलब्ध.
- त्रिवेदी, एच. एल. (वर्ष अनुपलब्ध). *बांसवाड़ा का सामाजिक और राजनीतिक इतिहास.* प्रकाशक अनुपलब्ध.
- राजस्थान सरकार. (वर्ष अनुपलब्ध). *राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर: बूंदी.* राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर.
- विजयकुमार. (1975). सिरोही राज्य में प्रजामण्डल की स्थापना. *राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस की कार्यवाही.* राजस्थान हिस्ट्री कांग्रेस.